

## अध्याय-१४



नांदेड़ के रतनजी वाडिया, संत मौला साहेब, दक्षिणा मीमांसा, गणपतराव बोडस, श्रीमती तर्खड, दक्षिणा का मर्म।

श्री साईबाबा के वचनों और कृपा द्वारा किस प्रकार असाध्य रोग भी निर्मूल हो गए, इसका वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है। अब बाबा ने किस प्रकार रतनजी वाडिया को अनुगृहीत किया तथा किस प्रकार उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, इसका वर्णन इस अध्याय में होगा।

इस संत की जीवनी सर्व प्रकार से प्राकृतिक और मधुर है। उनके अन्य कार्य भी जैसे भोजन, चलना-फिरना तथा स्वाभाविक अमृतोपदेश बड़े ही मधुर हैं। वे आनन्द के अवतार हैं। इस परमानंद का उन्होंने अपने भक्तों को भी रसास्वादन कराया और इसीलिये उन्हें उनकी चिरस्मृति बनी रही। भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्म और कर्तव्यों की अनेक कथाएँ भक्तों को उनके द्वारा प्राप्त हुई, जिससे वे सत्त्व मार्ग का अवलम्बन कर सके। बाबा की सदैव यही इच्छा थी कि लोग संसार में सुखी जीवन व्यतीत करें और वे सदैव जागरूक रहकर अपने जीवन का परम लक्ष्य, आत्मानुभूति (या ईश्वरदर्शन) अवश्य प्राप्त करें। पिछले जन्मों के शुभ कर्मों के फलस्वरूप ही यह देह प्राप्त हुई है और उसकी सार्थकता तभी है, जब उसकी सहायता से हम इस जीवन में भक्ति और मोक्ष प्राप्त कर सकें। हमें अपने अन्त और जीवन के लक्ष्य के हेतु सदैव सावधान तथा तत्पर रहना चाहिए।

यदि तुम नित्य श्री साई की लीलाओं का श्रवण करोगे तो तुम्हें उनका सदैव दर्शन होता रहेगा। दिनरात उनका हृदय में स्मरण करते रहो। इस प्रकार आचरण करने से मन की चंचलता शीघ्र नष्ट हो जाएगी। यदि इसका निरंतर अभ्यास किया गया तो तुम्हें चैतन्य-घन

से अभिन्नता प्राप्त हो जाएगी।

### नांदेड़ के रतनजी

अब हम इस अध्याय की मूल कथा का वर्णन करते हैं। नांदेड़ (निजाम रियासत) में रतनजी शापुरजी वाडिया नामक एक प्रसिद्ध व्यापारी रहते थे। उन्होंने व्यापार में यथेष्ट धनराशि संग्रह कर ली थी। उनके पास अतुलनीय सम्पत्ति, खेत और चरोहर तथा कई प्रकार के पशु, घोड़े, गधे, खच्चर आदि और गाड़ियाँ भी थीं। वे अत्यन्त भाग्यशाली थे। यद्यपि बाह्य दृष्टि से वे अधिक सुखी और सन्तुष्ट प्रतीत होते थे, परन्तु यथार्थ में वे वैसे न थे। विधाता की रचना कुछ ऐसी विचित्र है कि इस संसार में पूर्ण सुखी कोई नहीं और धनाढ्य रतनजी भी इसके अपवाद न थे। वे परोपकारी तथा दानशील थे। वे दीनों को भोजन और वस्त्र वितरण करते तथा सभी लोगों की अनेक प्रकार से सहायता किया करते थे। उन्हें लोग अत्यन्त सुखी समझते थे। किन्तु दीर्घ काल तक संतान न होने के कारण उनके हृदय में संताप अधिक था। जिस प्रकार प्रेम तथा भक्तिरहित कीर्तन, वाद्यरहित संगीत, यज्ञोपवीतरहित ब्राह्मण, व्यावहारिक ज्ञानरहित कलाकार, पश्चातापरहित तीर्थयात्रा और कंठमाला (मंगल सूत्र) रहित अलंकार, उत्तम प्रतीत नहीं होते, उसी प्रकार संतानरहित गृहस्थ का घर भी सूना ही रहता है। रतनजी सदैव इसी चिन्ता में निमग्न रहते थे। वे मन ही मन कहते, “क्या ईश्वर की मुझ पर कभी दया न होगी? क्या मुझे कभी पुत्र की प्राप्ति नहीं होगी?” इसके लिये वे सदैव उदास रहते थे। उन्हें भोजन से भी अरुचि हो गई। पुत्र की प्राप्ति कब होगी, यही चिन्ता उन्हें सदैव घेरे रहती थी। उनकी दासगणु महाराज पर दूढ़ निष्ठा थी। उन्होंने अपना हृदय उनके सम्मुख खोल दिया, तब उन्होंने श्री साई समर्थ की शरण जाने और उनसे संतान-प्राप्ति के लिये प्रार्थना करने का परामर्श दिया। रतनजी को भी यह विचार रुचिकर प्रतीत हुआ और उन्होंने शिरडी जाने का निश्चय किया। कुछ दिनों के उपरांत वे शिरडी आए और बाबा के दर्शन कर उनके चरणों पर गिरे। उन्होंने एक सुन्दर हार बाबा को पहना कर बहुत से फल-फूल भेंट किये। तत्पश्चात् आदर

सहित बाबा के पास बैठकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे, “अनेक आपत्तिग्रस्त लोग आप के पास आते हैं और आप उनके कष्ट तुरंत दूर कर देते हैं। यही कीर्ति सुनकर मैं भी बड़ी आशा से आपके श्रीचरणों में आया हूँ। मुझे बड़ा भरोसा हो गया है, कृपया मुझे निराश न कीजिये।” श्री साईबाबा ने उनसे पाँच रुपये दक्षिणा माँगी, जो वे देना ही चाहते थे। परन्तु बाबा ने पुनः कहा, “मुझे तुमसे तीन रुपये चौदह आने पहले ही प्राप्त हो चुके हैं। इसलिये केवल शेष रुपये ही दो।” यह सुनकर रतनजी असमंजस में पड़ गए। बाबा के कथन का अभिप्राय उनकी समझ में न आया। वे सोचने लगे कि यह “शिरडी आने का मेरा प्रथम ही अवसर है और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इन्हें तीन रुपये चौदह आने पहले ही प्राप्त हो चुके हैं।” वे यह पहली हल न कर सके। वे बाबा के चरणों के पास ही बैठे रहे तथा उन्हें शेष दक्षिणा अर्पित कर दी। उन्होंने अपने आगमन का हेतु बतलाया और पुत्र-प्राप्ति की प्रार्थना की। बाबा को दया आ गई। वे बोले, “चिन्ता त्याग दो, अब तुम्हारे दुर्दिन समाप्त हो गए हैं।” इसके बाद बाबा ने उदी देकर अपना वरदहस्त उनके मस्तक पर रखकर कहा, “अल्लाह तुम्हारी इच्छा पूरी करेगा।”

बाबा की अनुमति प्राप्त कर रतनजी नांदेड़ लौट आए और शिरडी में जो कुछ हुआ, उसे दासगणु को सुनाया। रतनजी ने कहा, “सब कार्य ठीक ही रहा। बाबा के शुभ दर्शन हुए, उनका आशीर्वाद और प्रसाद भी प्राप्त हुआ, परन्तु वहाँ की एक बात समझ में नहीं आई।” वहाँ पर बाबा ने कहा था कि, “मुझे तीन रुपये चौदह आने पहले ही प्राप्त हो चुके हैं।” कृपया समझाइये कि इसका क्या अर्थ है? इससे पूर्व मैं शिरडी कभी भी नहीं गया। फिर बाबा को वे रुपये कैसे प्राप्त हो गए, जिसका उन्होंने उल्लेख किया?” दासगणु के लिये भी यह एक पहली ही थी। बहुत दिनों तक वे इस पर विचार करते रहे। कई दिनों के पश्चात् उन्हें स्मरण हुआ कि कुछ दिन पहले रतनजी ने एक यवन संत मौला साहेब को अपने घर आतिथ्य के लिये निमंत्रित किया था तथा इसके निमित्त उन्होंने कुछ धन व्यय किया था। मौला साहेब नांदेड़ के एक प्रसिद्ध सन्त थे, जो कुली का काम किया करते

थे। जब रतनजी ने शिरडी जाने का निश्चय किया था, उसके कुछ दिन पूर्व ही मौला साहेब अनायास ही रतनजी के घर आए। रतनजी उनसे अच्छी तरह परिचित थे तथा उनसे प्रेम करते थे। इसलिये उनके सत्कार में उन्होंने एक छोटे से जलपान की व्यवस्था भी की थी। दासगणु ने रतनजी से आतिथ्य के खर्च की सूची माँगी और यह जानकर सबको आश्चर्य हुआ कि खर्चा ठीक तीन रुपये चौदह आने ही हुआ था, न इससे कम था और अधिक। सबको बाबा की त्रिकालज्ञता विदित हो गई। यद्यपि वे शिरडी में विराजमान थे, परन्तु शिरडी के बाहर क्या हो रहा है, इसका उन्हें पूरा-पूरा ज्ञान था। यथार्थ में बाबा भूत, भविष्यत् और वर्तमान के पूर्ण ज्ञाता और प्रत्येक आत्मा तथा हृदय के साथ संबद्ध थे। अन्यथा मौला साहेब के स्वागतार्थ खर्च की गई रकम बाबा को कैसे विदित हो सकती थी।

रतनजी इस उत्तर से सन्तुष्ट हो गए और उनकी साईंचरणों में प्रगाढ़ प्रीति हो गई। उपयुक्त समय पर उनके यहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ, जिससे उनके हर्ष का पारावार न रहा। कहते हैं कि उनके यहाँ बारह संतानें हुईं, जिनमें से केवल चार शेष रहीं।

इस अध्याय के नीचे लिखा है कि बाबा ने रावबहादुर हरी विनायक साठे को उनकी पहली पत्नी की मृत्यु के पश्चात् दूसरा ब्याह करने पर पुत्ररत्न की प्राप्ति बतलाई। रावबहादुर साठे ने द्वितीय विवाह किया। प्रथम दो कन्यायें हुईं, जिससे वे बड़े निराश हुए, परन्तु तृतीय बार पुत्र प्राप्त हुआ। इस तरह बाबा के वचन सत्य निकले और वे सन्तुष्ट हो गए।

### **दक्षिणा मीमांसा**

दक्षिणा के संबंध में कुछ अन्य बातों का निरूपण कर हम यह अध्याय समाप्त करेंगे। यह तो विदित ही है कि जो लोग बाबा के दर्शन को आते थे, उनसे बाबा दक्षिणा लिया करते थे। यहाँ किसी को भी शंका उत्पन्न हो सकती है कि जब बाबा फकीर और पूर्ण विरक्त थे तो क्या उनका इस प्रकार दक्षिणा ग्रहण करना और कांचन को महत्व देना उचित था? अब इस प्रश्न पर हम विस्तृत रूप से विचार

करेंगे।

बहुत काल तक बाबा भक्तों से कुछ भी स्वीकार नहीं करते थे। वे जली हुई दियासलाईयाँ एकत्रित कर अपनी जेब में भर लेते थे। चाहे भक्त हो या और कोई, वे कभी किसी से कुछ भी नहीं माँगते थे। यदि किसी ने उनके सामने एक पैसा रख दिया तो वे उसे स्वीकार करके उससे तम्बाकू अथवा तेल आदि खरीद लिया करते थे, वे प्रायः बीड़ी या चिलम पिया करते थे। कुछ लोगों ने सोचा कि बिना कुछ भेंट किये सन्तों का दर्शन उचित नहीं है। इसलिये वे बाबा के सामने पैसे रखने लगे। यदि एक पैसा होता तो वे उसे जेब में रख लेते और यदि दो पैसे हुए तो तुरन्त उसमें से एक पैसा वापस कर देते थे। जब बाबा की कीर्ति दूर-दूर तक फैली और लोगों के झुण्ड के झुण्ड बाबा के दर्शनार्थ आने लगे, तब बाबा ने उनसे दक्षिणा लेना आरम्भ कर दिया। श्रुति कहती है कि स्वर्ण मुद्रा के अभाव में भगवतपूजन भी अपूर्ण है। अतः जब ईश्वर-पूजन में मुद्रा आवश्यक है तो फिर सन्तपूजन में क्यों न हो? इसीलिये शास्त्रों में कहा है कि ईश्वर, राजा, सन्त या गुरु के दर्शन, अपनी सामर्थ्यानुसार बिना कुछ अर्पण किये, कभी न करना चाहिए। उन्हें क्या भेंट दी जाए? अधिकतर मुद्रा या धन। इस सम्बन्ध में उपनिषदों में वर्णित नियमों का अवलोकन करें। वृहदारण्यक उपनिषद् में बताया गया है कि दक्ष प्रजापति ने देवता, मनुष्य और राक्षसों के सामने एक अक्षर 'द' का उच्चारण किया। देवताओं ने इसका अर्थ लगाया कि उन्हें दम अर्थात् आत्म-नियंत्रण का अभ्यास करना चाहिए। मनुष्यों ने समझा कि उन्हें दान का अभ्यास करना चाहिए तथा राक्षसों ने सोचा कि हमें दया का अभ्यास करना चाहिए। मनुष्यों को दान की सलाह दी गई। तैत्तिरीय उपनिषद् में दान व अन्य सत्व गुणों को अभ्यास में लाने की बात कही गयी है। दान के संबंध में लिखा है, "विश्वासपूर्वक दान करो, उसके बिना दान व्यर्थ है। उदार हृदय तथा विनम्र बन कर, आदर और सहानुभूतिपूर्वक दान करो।" भक्तों को कांचन-त्याग का पाठ पढ़ाने तथा उनकी आसक्ति दूर करने और चित्त शुद्ध कराने के लिए ही बाबा सबसे दक्षिणा लिया करते थे। परन्तु उनकी एक विशेषता भी थी। बाबा कहा

करते थे कि, “जो कुछ भी मैं स्वीकार करता हूँ, मुझे उसे सौ गुना से अधिक वापस करना पड़ता है।” इसके अनेक प्रमाण हैं।

(१) **एक घटना** : श्री गणपतराव बोडस, प्रसिद्ध कलाकार, अपनी आत्म-कथा में लिखते हैं कि बाबा के बार-बार आग्रह करने पर उन्होंने अपने रुपयों की थैली उनके सामने उँडेल दी। श्री बोडस लिखते हैं कि इसका परिणाम यह हुआ कि जीवन में फिर उन्हें धन का अभाव कभी न हुआ तथा प्रचुर मात्रा में लाभ ही होता रहा। इसका एक भिन्न अर्थ भी है। अनेकों बार बाबा ने किसी प्रकार की दक्षिणा स्वीकार भी नहीं की। इसके दो उदाहरण हैं। बाबा ने प्रो.सी.के. नारके से १५ रुपये दक्षिणा माँगी। वे प्रत्युत्तर में बोले, कि मेरे पास तो एक पाई नहीं है। तब बाबा ने कहा कि, “मैं जानता हूँ, तुम्हारे पास कोई द्रव्य नहीं है, परन्तु तुम योगवशिष्ट का अध्ययन तो करते हो, उसमें से ही दक्षिणा दो।” यहाँ दक्षिणा का अर्थ है - पुस्तक से शिक्षा ग्रहण कर हृदयंगम करना, जो कि बाबा का निवासस्थान है।

(२) एक दूसरी घटना में, उन्होंने एक महिला श्रीमती आर.ए. तर्खड से छः रुपये दक्षिणा माँगी। महिला बहुत दुःखी हुई, क्योंकि उनके पास देने को कुछ भी न था। उनके पति ने उन्हें समझाया कि बाबा का अर्थ तो षड्रिपुओं से है, जिन्हें बाबा को समर्पित कर देना चाहिए। बाबा इस अर्थ से सहमत हो गए।

यह ध्यान देने योग्य है कि बाबा के पास दक्षिणा के रूप में बहुत-सा द्रव्य एकत्रित हो जाता था। सब द्रव्य वे उसी दिन व्यय कर देते और दूसरे दिन फिर सदैव की भाँति निर्धन बन जाते थे। जब उन्होंने महासमाधि ली तो १० वर्ष तक हजारों रुपया दक्षिणा मिलने पर भी उनके पास स्वल्प राशि ही शेष थी।

संक्षेप में दक्षिणा लेने का मुख्य ध्येय तो भक्तों को केवल शुद्धीकरण का पाठ ही सिखाना था।

### **दक्षिणा का मर्म**

ठाणे के श्री बी.व्ही. देव, (सेवा-निवृत्त प्रान्त मामलतदार, जो बाबा के परम भक्त थे) ने इस विषय पर एक लेख (साई लीला पत्रिका,

भाग ७, पृष्ठ ६२३) अन्य विषयों सहित प्रकाशित किया है, जो निम्न प्रकार है :- “बाबा प्रत्येक से दक्षिणा नहीं लेते थे। यदि बाबा के बिना माँगे किसी ने दक्षिणा भेंट की तो वे कभी तो स्वीकार कर लेते और कभी अस्वीकार भी कर देते थे। वे केवल भक्तों से ही कुछ माँग करते थे। उन्होंने उन लोगों से कभी कुछ न माँगा, जो सोचते थे कि बाबा के माँगने पर ही दक्षिणा देंगे। यदि किसी ने उनकी इच्छा के विरुद्ध दक्षिणा दे दी तो वे वहाँ से उसे उठाने को कह देते थे। स्त्री और बालकों से भी वे दक्षिणा ले लेते थे। उन्होंने सभी धनाढ्यों या निर्धनों से कभी दक्षिणा नहीं माँगी। बाबा के माँगने पर भी जिन्होंने दक्षिणा न दी, उनसे वे कभी क्रोधित नहीं हुए। यदि किसी मित्र द्वारा उन्हें दक्षिणा भिजवाई गई होती और उसका उसे स्मरण न रहता तो बाबा किसी न किसी प्रकार उसे स्मरण कराकर वह दक्षिणा ले लेते थे। कुछ अवसरों पर वे दक्षिणा की राशि में से कुछ अंश लौटा भी देते और देने वालों को सँभाल कर रखने या पूजन में रखने के लिये कह देते थे। इससे दाता या भक्त को बहुत लाभ पहुँचता था। यदि किसी ने अपनी इच्छित राशि से अधिक भेंट की तो वे वह अधिक राशि लौटा देते थे। किसी-किसी से तो वे उसकी इच्छित राशि से भी अधिक माँग कर बैठते थे और यदि उसके पास नहीं होती तो दूसरे से उधार लेने या दूसरों से माँगने को भी कहते थे। किसी-किसी से तो दिन में तीन-चार बार दक्षिणा माँगा करते थे।”

दक्षिणा में एकत्रित राशि में से बाबा अपने लिये बहुत थोड़ा खर्च किया करते थे। जैसे-चिलम पीने की तंबाकू और धूनी के लिए लकड़ियाँ मोल लेने के लिये आदि। शेष अन्य व्यक्तियों को विभिन्न राशियों में भिक्षास्वरूप दे देते थे। शिरडी संस्थान की समस्त सामग्रियाँ राधाकृष्णमाई की प्रेरणा से ही धनी भक्तों ने एकत्र की थीं। अधिक मूल्यवाले पदार्थ लाने वालों से बाबा अति क्रोधित हो जाते और अपशब्द कहने लगते थे। उन्होंने श्री नानासाहेब चाँदोरकर से कहा कि मेरी सम्पत्ति केवल एक कौपीन और टमरेल है। लोग बिना कारण ही मूल्यवान् पदार्थ लाकर मुझे दुःखित करते हैं। कामिनी और कांचन मार्ग में दो मुख्य बाधाएँ हैं और बाबा ने इसके लिए दो पाठशालाएँ

खोली थीं। यथा-दक्षिणा ग्रहण करना और राधाकृष्णमाई के यहाँ भेजना-इस बात की परीक्षा करने के लिये कि क्या उनके भक्तों ने इस आसक्तियों से छुटकारा पा लिया है या नहीं। इसीलिये जब कोई आता तो वे उनसे दक्षिणा माँगते और उनसे शाला में (राधाकृष्णमाई के घर) जाने को कहते। यदि वे इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गए अर्थात् यह सिद्ध हुआ कि वे कामिनी और कांचन की आसक्ति से विरक्त हैं तो बाबा की कृपा और आशीर्वाद से उनकी आध्यात्मिक उन्नति निश्चय ही हो जाती थी।

श्री देव ने गीता और उपनिषद् से घटनाएँ उद्धृत की हैं, और कहते हैं कि किसी तीर्थस्थान में किसी पूज्य सन्त को दिया हुआ दान दाता को बहुत कल्याणकारी होता है। शिरडी और शिरडी के प्रमुख देवता साईबाबा से पवित्र और है ही क्या?

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥